Worth Reporting

न्यायालय राजस्व मण्डल राजस्थान, अजमेर

अपील/डिक्री/टीए/147 /2008/अजमेर

मंदिर मार्गी पंचायत ओसवाल जरिये श्री जैन श्वेताम्बर श्री संघ (पंजीकृत) अजमेर जरिये अध्यक्ष श्री छगनमल जालौरी पुत्र श्री सोहन लाल रजिस्टर्ड आफिस श्री श्री संभवनाथ जी का मंदिर लाखन कोटडी, अजमेर।

.....अपीलार्थी

बनाम

1– नगर सुधार न्यास अजमेर जरिये सचिव अजमेर।
2– राजस्थान सरकार जरिये तहसीलदार अजमेर।
3– श्री जैन श्वेताम्बर खतरगच्छ संघ अजमेर जरिये अध्यक्ष नरेन्द्र लूनिया पुत्र श्री प्रकाश लूनिया जाति जैन, निवासी एन.के.ज्वैलर्स लूनिया मेंशन नया बाजार अजमेर।

..... प्रत्यर्थीगण

खण्ड–पीठ
श्री अशोक कुमार सांवरिया, सदस्य
श्री मूलचन्द मीणा, सदस्य

उपस्थित :
श्री खडगसिंह, अभिभाषक अपीलार्थी।
श्री नरेश कुमार, अभिभाषक प्रत्यर्थी संख्या–3.
श्री अजीत सिंह, अभिभाषक प्रत्यर्थी संख्या–1.
श्री हगामीलाल उप राजकीय अभिभाषक।

निर्णय

दिनांकः– 15–04–2014

1– राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 (संक्षेप में 'अधिनियम, 1955') की धारा 224 के अंतर्गत यह द्वितीय अपील न्यायालय, राजस्व अपील प्राधिकारी, अजमेर (प्रथम अपीलीय न्यायालय) द्वारा अपील संख्या 180/2007 में पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 22–12–2007 के विरूद्ध प्रस्तुत की गयी है।

2– अपील ज्ञापन अनुसार प्रकरण के सुसंगत तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं किः–

(1) वादी/अपीलार्थी ने अधिनियम, 1955 की धारा 88, 89, 188 एंव 92–ए के अंतर्गत एक वाद नगर सुधार न्यास, अजमेर तथा राजस्थान सरकार के विरुद्ध वास्ते घोषणा, इन्द्राज दुरुस्ती व स्थायी निषेधाज्ञा हेतु न्यायालय उपखंड अधिकारी अजेमर (विचारण न्यायालय) के समक्ष प्रस्तुत कर निवेदन किया कि वादी अपीलार्थी एक रजिस्टर्ड संस्था है एवं जमाबन्दी सम्वत् 2016 से 2019 के अनुसार वादग्रस्त भूमि वादी/ अपीलार्थी के खाते में दर्ज होकर

वादी संस्था उक्त आराजी पर काबिज चली आ रही है। किन्तु वादी संस्था को बिना किसी सूचना के राजस्व अधिकारियों ने वादग्रस्त भूमि को सिवायचक घोषित करके नगर सुधार न्यास अजमेर को हस्तान्तरित कर दिया। अतः नगर सुधार न्यास के नाम से वादग्रस्त भमि को हटाया जाकर पुनः अपीलार्थी/वादी संस्था को उक्त विवादित आराजी को जमाबन्दी में पूर्व की भांति खातेदार दर्ज किया जावे व प्रतिवादीगण को वादी/ अपीलार्थी के कब्जे–काश्त में हस्तक्षेप न करने हेतु पाबन्द किया जावे।

(2) दौराने वाद प्रत्यर्थी संख्या–3 द्वारा जरिये अध्यक्ष पक्षकार बनने हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया, जिसे विचारण न्यायालय ने स्वीकार कर प्रत्यर्थी संख्या–3 को पक्षकार बनाया। पक्षकार बनने के बाद प्रत्यर्थी संख्या–3 ने एक प्रार्थनापत्र आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रस्तुत कर निवेदन किया कि विवादित आराजी नगर सुधार न्यास द्वारा प्रत्यर्थी संख्या–3 को आवंटित कर दी गई है व उक्त भूमि पर मंदिर व छतरियां बनी हुई है। वादग्रस्त भूमि कृषि भूमि नहीं होने के कारण अपीलार्थी का वाद निरस्त किया जावे।

(3) विचारण न्यायालय ने उभयपक्ष को सुनकर अपने निर्णय दिनांक 25–05–2007 द्वारा आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया का प्रार्थनापत्र स्वीकार करके वादी/ अपीलार्थी का वाद चलने योग्य नहीं मानते हुये खारिज कर दिया। विचारण न्यायालय के उक्त निर्णय दिनांक 25–05–2007 से असन्तुष्ट हो कर वादी/ अपीलार्थी ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत की, जिसको प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 22–12–2007 द्वारा अस्वीकार करते हुये विचारण न्यायालय का निर्णय व डिक्री दिनांक 25–05–2007 को बहाल रखा।

(4) प्रथम अपीलीय न्यायालय के उक्त निर्णय दिनांक 22–12–2007 से व्यथित होकर यह द्वितीय अपील राजस्व मण्डल में वादी/ अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई है।

3– उभय पक्ष की बहस सुनी गई।

4– विद्वान अभिभाषक अपीलार्थी ने अपील ज्ञापन में वर्णित तथ्यों व आधारों को दोहराते हुये अभिकथन किया किः–

(1) कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा इस तथ्य पर गौर नहीं किया गया कि वादी/ अपीलार्थी का वाद वास्ते खातेदारी घोषणा, इन्द्राज दुरूस्ती व स्थाई निषेधाज्ञा का था, जो अधिनियम, 1955 की तृतीय सूची सपठित धारा 207 अनुसार सहायक कलेक्टर/ उपखण्ड अधिकारी के न्यायालय में ही चल सकता है। अतः सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अन्तर्गत वाद को खारिज नहीं किया जा सकता है। खातेदारी घोषणा व अभिलेख दुरुस्ती का क्षेत्राधिकार राजस्व न्यायालय को है। अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत राजस्व

जमाबंदी में वादी संस्था का नाम बतौर खातेदार दर्ज है जिसे बिना किसी सक्षम आदेश के सिवायचक दर्ज कर दिया और वादी/ अपीलार्थी को बिना सुने नगर सुधार न्यास को हस्तांतरित कर दिया गया, जो अवैध होने से दुरूस्ती की कार्यवाहीं का क्षेत्राधिकार राजस्व न्यायालय को ही था।

(2) कि जिस समय वाद प्रस्तुत किया गया था, उस समय प्रत्यर्थी संख्या–3 के नाम नगर सुधार न्यास द्वारा कोई आवंटन नहीं किया गया था। अतः वादग्रस्त भूमि को कृषि भूमि नहीं मान कर वाद को खारिज करना त्रुटिपूर्ण है। दौराने वाद यदि प्रत्यर्थी संख्या–3 ने कोई पट्टा प्राप्त कर भी लिया है तो उसके आधार पर वादी/अपीलार्थी का वाद निरस्त नहीं किया जा सकता है। राजस्व वाद के लम्बित रहते हुये प्रत्यर्थी संख्या–3 के पक्ष में जो पट्टा जारी किया गया है उसके आधार पर विवादित भूमि को आबादी भूमि मानकर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा वाद को निरस्त करने में गंभीर अनियमितता की गई है।

(3) कि वादी/अपीलार्थी की भूमि को पहले राज्य सरकार के खाते में तथा फिर नगर सुधार न्यास अजमेर के खाते में दर्ज कर, नगर सुधार न्यास द्वारा प्रत्यर्थी संख्या–3 को किया गया आवंटन व पट्टा वादी/ अपीलार्थी के विरूद्ध बेअसर है। वाद दायरी के समय न तो प्रत्यर्थी संख्या–3 अस्तित्व में था और न ही प्रत्यर्थी को जारी किया गया पट्टा अस्तित्व में था। अतः दावा प्रस्तुत करने के पश्चात जारी आवंटन आदेश को आधार बनाकर आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थना पत्र के आधार पर वादी/ अपीलार्थी का वाद निरस्त नहीं किया जा सकता था।

(4) कि आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थनापत्र का निर्णय केवल वाद–पत्र के अभिवचनों के आधार पर किया जाना होता है किन्तु हस्तगत प्रकरण में विचारण न्यायालय द्वारा, आदेश 7 नियम 11 के दायरे (scope) से परे जाकर, प्रत्यर्थी संख्या–3 के उक्त प्रार्थनापत्र में वर्णित तथ्यों को आधार बना कर वादी/ अपीलार्थी का वाद, विवादित आराजी को कृषि भूमि न होना मानते हुये व आबादी भूमि मानते हुये, निरस्त किया है, जो स्पष्ट रुप से विधि के विपरीत निर्णय है और अपीलीय न्यायालय द्वारा भी ऐसे विधि विरुद्ध निर्णय को बहाल रखा गया है। इस प्रकार दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने पत्रावली पर उपलब्ध तथ्यों एवं साक्ष्य की अनदेखी करते हुये नियमो से परे निर्णय पारित किया है।

उपरोक्त तर्कों के साथ विद्वान अभिभाषक का कथन है कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय विधि विरूद्ध होने से खारिज किये जाकर यह द्वितीय अपील स्वीकार की जावे एवं प्रकरण उपखण्ड अधिकारी अजमेर को इस निर्देश के साथ प्रतिप्रेषित किया जावे कि वह प्रकरण का निस्तारण नियमानुसार गुणावगुण पर करें।

5— उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध करते हुये प्रत्यर्थी संख्या—3 के विद्वान अभिभाषक श्री नरेश कुमार ने अभिकथन किया कि:—

(1) कि विवादित भूमि राजस्व अभिलेखों में सिवायचक होने के कारण जिला कलेक्टर द्वारा नगर सुधार न्यास को हस्तान्तरित की गई थी, और नगर सुधार न्यास ने आदेश दिनांक 27—11—06 से कुल 8 बीधा 8 बिस्वा भूमि का नि:शुल्क आवंटन प्रत्यर्थी—3 श्री जैन श्वेताम्बर खतरगच्छ संघ अजमेर को किया है। मौके पर विवादित भूमि के चारों ओर चारदीवारी है जिसके अन्दर धर्मस्थल, छतरियां, सभा भवन, भोजनालय व विद्यालय आदि बने हुये हैं। इस प्रकार भूमि की किस्म वर्तमान में कृषि भूमि नहीं रही है और वादग्रस्त भूमि राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 की धारा 5 (24) के दायरे से बाहर हो गयी है। भूमि नगर पालिका क्षेत्र में है। अतः वादी/अपीलार्थी का वाद राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार में नहीं होने के कारण संधारण योग्य नहीं था। इस कारण आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रार्थनापत्र को स्वीकार करके वाद को खारिज करने में विचारण न्यायालय द्वारा कोई विधिक त्रुटि कारित नहीं की गयी है।

(2) कि अजमेर क्षेत्र में राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 सम्वत 2015 में दिनांक 15—06—1958 को लागू हुआ था और उस समय की जमाबन्दी में वादग्रस्त भूमि खसरा नम्बर 3928 आबादी में दर्ज है। इस कारण भी वादी/ अपीलार्थी द्वारा 23—06—2006 को प्रस्तुत घोषणात्मक दावा पोषणीय नहीं था। इसके अलावा सिवायचक भूमि दिनांक 27—11—2005 को जिला कलेक्टर द्वारा नगर सुधार न्यास को हस्तान्तरित करने के साथ ही वादग्रस्त भूमि सार्वजनिक प्रयोजनार्थ आरक्षित भूमि की श्रेणी में आ गयी थी और इस कारण धारा 16 राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 के प्रावधानानुसार ऐसी भूमि पर खातेदारी प्राप्ति हेतु दावा नहीं लाया जा सकता है।

अन्त में विद्वान अभिभाषक का तर्क कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों समवर्ती हैं और उनमें किसी प्रकार की विधिक या तथ्यात्मक त्रुटि परिलक्षित नहीं है। अतः यह द्वितीय अपील खारिज की जावे।

6— प्रत्यर्थी संख्या—1 नगर सुधार न्यास के विद्वान अभिभाषक श्री अजीत सिंह द्वारा भी श्री नरेश कुमार द्वारा प्रस्तुत तर्कों का समर्थन किया है।

7— उपराजकीय अधिवक्ता श्री हगामीलाल चौधरी का तर्क है कि राजस्थान भूराजस्व अधिनियम, 1956 की धारा 92 के प्रावधानानुसार जिला कलेक्टर को विशेष प्रयोजन हेतु भूमि को अलग (set apart) करने का

अधिकार है। इस अधिकार का उपयोग करते हुये जिला कलेक्टर ने वादग्रस्त भूमि को, जो उस समय सिवायचक भूमि थी, नगर सुधार न्यास को विशिष्ट प्रयोजन हेतु आवंटित किया है। वादी/ अपीलार्थी ने स्वयं अपने वादपत्र की मद संख्या–4 में माना है कि वादग्रस्त भूमि को जरिये नामान्तरकरण संख्या 203 दिनांक 31–03–2004 तथा नामान्तरकरण संख्या–204 दिनांक 31–03–2004 नगर सुधार न्यास अजमेर के नाम दर्ज किया जा चुका है। इस प्रकार स्वयं वादी के वादपत्र से ही दावा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 (डी) के प्रावधानों के तहत विधि से वर्जित था। अतः वादी का दावा अपोषणीय मान कर दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा कोई विधिक त्रुटि नहीं की गयी है।

8– उभयपक्ष की बहस पर मनन किया गया एवं अधीनस्थ न्यायालयों की पत्रावलियों पर उपलब्ध निर्णयों के साथ संलग्न अभिलेख गहनता से अद्योपान्त अवलोकन व अध्ययन किया गया।

9– वादी के वाद में मूलतः वर्तमान प्रत्यर्थी संख्या–3 पक्षकार नहीं था। उक्त प्रत्यर्थी संख्या–3 सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 10 के अन्तर्गत वाद में पक्षकार बना और उसके बाद आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर वाद को क्षेत्राधिकार/ पोषणीयता के आधार पर खारिज करने का अनुरोध किया गया। विचारण न्यायालय द्वारा उक्त प्रार्थनापत्र को स्वीकार करते हुये पर इस आधार पर वाद खारिज कर दिया कि वादग्रस्त भूमि आबादी क्षेत्र में होने, नगर सुधार न्यास द्वारा प्रत्यर्थी संख्या–3 को निःशुल्क आवंटन कर दिये जाने से तथा कृषि प्रयोजनार्थ कार्य में नहीं आने से वादग्रस्त भूमि अधिनियम, 1955 की धारा 5 (24) के अन्तर्गत नहीं आती है और इस कारण इस भूमि बाबत प्रस्तुत यह वाद अधिनियम, 1955 की धारा 207 के क्षेत्र में नहीं आता है। विद्वान विचारण न्यायालय का अंकित निष्कर्ष इस प्रकार है कि **''वादग्रस्त भूमि आबादी क्षेत्र में होने तथा नगर सुधार न्यास द्वारा निशुल्क आवंटन कर दिये जाने के कारण तथा कृषि प्रयोजनार्थ कार्य में नहीं आने के कारण यह भूमि अन्तर्गत धारा 5 (24) राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत नहीं आती है। अतः प्रस्तुत यह वाद राजस्व न्यायालय में चलने योग्य नहीं है।''** इस प्रकार हस्तगत द्वितीय अपील में हमारे समक्ष पक्षकारान के हक व अधिकारों के परीक्षण का बिन्दु नहीं हे अपितु मुख्य विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत वाद को खारिज करना एक विधिक निर्णय है?

10– विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय से एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या केवल आबादी क्षेत्र से घिरी हुई होने से किसी भूमि को ''आबादी'' भूमि माना जा सकता है, वादग्रस्त भूमि के कुल 6 किता खसरा नम्बरान हैं, जिनमें केवल एक खसरा नम्बर 3928 को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण वादग्रस्त भूमि राजस्व अभिलेख व जिला कलेक्टर के आदेश दिनांक 25–04–2004 में राजकीय सिवायचक ''बारानी–3'' के रुप में दर्ज

है। विचारणीय यह है कि क्या कोई भूमि आबादी क्षेत्र के मध्य आ जाने मात्र से अथवा मौके पर कृषि प्रयोजनार्थ काम में नहीं आने मात्र से अधिनियम, 1955 की धारा 5 (24) और धारा 207 सपठित तृतीय अनुसूची की परिधि से बाहर हो जाती है। इस बिन्दु पर हम यहां माननीय उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कुछ न्यायिक दृष्टान्तों का उल्लेख करना उचित समझते हैंः–

(1) 1999 आरआरडी 329 में भी भूमि की किस्म के आधार पर न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बिन्दु पर चर्चा करते हुये अभिनिर्धारित किया गया है कि दावे की दिनांक को यदि विवादित भूमि राजस्व रिकॉर्ड़ में कृषि भूमि के रूप में दर्ज है तो दावे को राजस्व न्यायालय द्वारा ही सुना जावेगा। 1998 आरआरडी 546 से समर्थन लेते हुये यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि **आबादी क्षेत्र में आने वाली कृषि भूमि को तब तक आबादी भूमि नहीं कहलायेगी जब तक कि संदर्भित भूमि आबादी हेतु सम्परिवर्तित नहीं कर दी जावे।**

(2) 1991 आरआरडी पेज 451 में माननीय उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा इस प्रश्न का विवेचन किया है कि किसी भूभाग को कृषि भूमि अथवा गैर कृषि भूमि यथा आबादी भूमि मानने का आधार क्या है? माननीय खण्डपीठ द्वारा 1980 डब्ल्यूएलएन 295 में प्रतिपादित व्यवस्था की ही पुष्टि करते हुये यह अभिनिर्धारित किया गया है किः–

> *"Although, the law nowhere defines 'agriculture land' or 'the land used for agricultural purposes' but on the basis of this authority, we can safely say that every land has to be presumed to be an agricultural land unless it is proved to be otherwise or has been recorded as such in the settlement records."*

(3) अशोक चौहान बनाम श्रीमती अमरी बाई व अन्य के प्रकरण– 2010 RRD 509 में घोषणा व स्थायी निषेधाज्ञा हेतु 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम (Specific Relief Act, 1963) की धारा 34/38 के अन्तर्गत सिविल न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया गया। वादग्रस्त भूमि पर प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकारों की घोषणा चाही गयी थी और यह अनुरोध किया गया था कि प्रतिवादीगण को दखलन्दाजी नहीं करने बाबत पाबन्द किया जावे। प्रतिवादीगण की तरफ से यह आपत्ति प्रस्तुत की गयी कि वाद सिविल न्यायालय में नहीं, अपितु राजस्व न्यायालय में विचारणीय है। प्रकरण माननीय उच्च न्यायालय के सामने आने पर राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 की धारा 88, 188, 207 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 10 व उक्त विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम (Specific Relief Act, 1963) की धारा 34/38 के संदर्भ यह प्रतिपादित किया गया किः–

> *"Since all land is presumed to be agriculture in nature, until and unless it is converted by an appropriate authority, therefore, the learned judge is certainly justified*

in concluding that the land in dispute is an agricultural land, even if such admissions were not made by the applicant." (para 5)

उपरोक्त विवेचन व न्यायिक दृष्टान्तों का सारांश यह है कि जब तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियमों के अन्तर्गत भूमि उपयोग बाबत सम्परिवर्तन नहीं कर दिया गया हो, भूमि को विधिक रुप से आबादी भूमि नहीं माना जा सकता है। चूंकि हस्तगत प्रकरण में वादी द्वारा अधिकार घोषणा व स्थायी निषेधाज्ञा का अनुतोष चाहा गया है और वाद प्रस्तुत करने की दिनांक 26–06–2006 तक वादग्रस्त भूमि को किसी भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा गैर कृषि प्रयोजनार्थ उपयोग हेतु सम्परिवर्तित नहीं किया गया था। यह न्यायिक दृष्टान्त हस्तगत प्रकरण पर पूरी तरह चस्पा होता है।

11– विचारण न्यायालय का मत है कि कृषि प्रयोजनार्थ कार्य में नहीं आने के कारण वादग्रस्त भूमि अधिनियम, 1955 की धारा 5 (24) के अन्तर्गत नहीं आती है, इस कारण यह वाद राजस्व न्यायालय में चलने योग्य नहीं है। अधिनियम, 1955 की उक्त धारा 5 (24) में भूमि को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैः–

***"(24) 'Land'** shall mean land which is let or held for agriculture purposes or for purposes subservient thereto or as grove land or for pasturage, including land occupied by houses or enclosures situated on a holdings, or land covered with water which may be used for the purpose of irrigation or growing singhara or other similar produce but excluding abadi land. It shall include benefits to arise out of land and things attached to the earth or permanently fastened to anything attached to earth."*

भूमि की उपरोक्त परिभाषा अनुसार ''भूमि'' का अर्थ land held for (a) agricultural purposes, or (b) purposes subservient to agriculture or (c) grove land or (d) pasturage (pasrture land) है, और इसमें land occupied by houses or enclosures situated on a holding or land covered with water which may be used for the purpose of irrigation or growing singharas or other similar products शामिल है किन्तु "abadi land" शामिल नहीं है। इस प्रकार कोई भूमि अधिनियम, 1955 की धारा 5 (24) अनुसार ''भूमि'' है अथवा नहीं? और क्या वह भूमि विधिक दृष्टि से आबादी भूमि है या नहीं? आदि अत्यन्त जटिल प्रश्न है, जो तथ्य एवं विधि के मिश्रित प्रश्न हैं और इसका निर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर नहीं किया जा सकता है। तथ्य एवं विधि के मिश्रित प्रश्नों का निर्णय विवाद्यक विरचित करने के बाद पक्षकारान को दस्तावेजी व मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने का समुचित अवसर देने के बाद ही किया जा सकता है।

12— वादी/ वर्तमान अपीलार्थी का दावा अधिनियम, 1955 की धारा 88, 89, 188 एवं 92—ए के अन्तर्गत खातेदारी अधिकारों की घोषणा व स्थायी निषेधाज्ञा के लिये था, जिसका आधार यह था कि वादग्रस्त भूमि जमाबन्दी सम्वत 2016—2019 के अनुसार वादी के नाम दर्ज रही है किन्तु वादीगण को सूचना दिये बिना उक्त भूमि को नगर सुधार न्यास को हस्तान्तरित करके नामान्तरकरण संख्या 203 व 204 से उसे नगर सुधार न्यास के नाम दर्ज कर दिया गया। अनुतोष यह चाहा गया था कि वादी को पूर्व की भांति वादग्रस्त आराजियात खातेदार व मालिक घोषित किया जावे, अभिलेखों में दुरुस्ती की जावे, प्रतिवादी नगर सुधार न्यास का नाम अभिलेख से हटाया जावे और नगर सुधार न्यास को जरिये स्थायी निषेधाज्ञा पाबन्द किया जावे कि वह वादग्रस्त आराजी को किसी अन्य को आवंटित व नियमित नहीं करे और ना ही वादी के कब्जा काश्त में किसी प्रकार का कोई व्यवधान करें। इस प्रकार वादी के वादपत्र के सारांश के अवलोकन करने मात्र से साबित है कि वादी का दावा अधिनियम, 1955 की धारा 207 सपठित अनुसूची—3 की विभिन्न प्रविष्टियों के अनुसार राजस्व न्यायालय के ही क्षेत्राधिकार का था और वादपत्र में ऐसा कोई अभिवचन नहीं था, जिसके आधार पर वाद को विधि से वर्जित माना जावे। अधिनियम, 1955 की धारा 207 निम्न प्रकार हैः—

> ***"207. Suits and applications Cognizable by revenue courts only.-*** *(1) All suits and applications of the nature specified in the Third Schedule shall be heard and decided by a revenue court.*
>
> *(2) No court other than a revenue court shall take cognizance of any such suit or application or of any suit or application based on a cause of action in respect of which any relief could be obtained by means of any such suits or applications.*
>
> *Explanation- If the cause of action is one in respect of which relief might be granted by the revenue court, it is immaterial that the relief asked for from the civil court is greater than, or additional to, or is not identical with, that which the revenue court could have granted."*

इस प्रकार उपरोक्त धारा 207 के प्रावधानानुसार वह सभी वाद राजस्व न्यायालय में चल सकते हैं, जो अधिनियम की तृतीय अनुसूची में वर्णित है। वादी का दावा मुख्यतः अधिनियम, 1955 की धारा 88, 89 व 188 के अन्तर्गत था और उक्त अधिनियम की तृतीय अनुसूची की प्रविष्टि संख्या 5, 6 व 23—सी अनुसार ऐसा दावा सहायक कलेक्टर के न्यायालय में सुनवाई योग्य है। अतः हमारे मत अनुसार विचारण न्यायालय का यह मत त्रुटिपूर्ण है कि वादी का दावा राजस्व न्यायालय में चलने योग्य नहीं है।

13— जिला कलेक्टर द्वारा आदेश दिनांक 25—04—2004 से वादग्रस्त भूमियां नगर सुधार न्यास को ''राजकीय सिवायचक भूमि'' के

बतौर हस्तान्तरित की गयी है और उक्त आदेश दिनांक 25–04–2004 में स्पष्ट रुप से यह शर्त अंकित है कि यदि किसी भी अदालत में इस भूमि के सम्बन्ध में कोई प्रकरण विचाराधीन है तो वह अप्रभावित रहेगा और हस्तान्तरित की गयी भूमि पर किसी भी प्रकार का वैध हक है अथवा वैध हक अर्जित होने योग्य है तो उसको यह आदेश प्रभावित नहीं करेगा। इसका आशय है कि हस्तान्तरित की गयी भूमि में अगर किसी व्यक्ति द्वारा अपना हक जताया जाता है तो वह सक्षम न्यायालय में जाकर अथवा नगर सुधार न्यास के साथ आपसी समझौता करके अपने हकों का विनिश्चयन कराने के लिये स्वतंत्र है। हस्तगत प्रकरण में वर्तमान अपीलार्थी द्वारा वादग्रस्त भूमि में अपना हक जताते हुये खातेदारी अधिकारों का विनिश्चयन कराने के लिये विचारण न्यायालय में घोषणात्मक दावा प्रस्तुत किया। जिला कलेक्टर के हस्तान्तरण आदेश के साथ जो परिशिष्ट–20 संलग्न है उसके कॉलम संख्या 4 में खसरा नम्बर 3927, 3929, 3930 व 3931 की किस्म भूमि ''बारानी–3'' दर्ज है, इससे जाहिर है कि हस्तान्तरण के वक्त भी वादग्रस्त भूमियों की किस्म ''राजकीय सिवायचक बारानी–3'' थी। केवल खसरा नम्बर 3928 की किस्म ''आबादी'' अंकित है और यह खसरा तो जमाबन्दी सम्वत 2016–19 में भी वर्तमान अपीलार्थी संस्था की खातेदारी में बतौर ''आबादी'' ही दर्ज था। इस प्रकार जिला कलेक्टर द्वारा वादग्रस्त भूमि को राजकीय मान कर अगर नगर सुधार न्यास को हस्तान्तरित भी कर दी गयी तो वादी को अपने अधिकार घोषित कराने हेतु दावा लाने से विवर्जित नहीं किया जा सकता है।

14– विचारण न्यायालय द्वारा वादी का वाद इस आधार पर भी खारिज किया गया है कि वादग्रस्त भूमि नगर सुधार न्यास द्वारा प्रत्यर्थी संख्या–3 को निःशुल्क आवंटन कर दिये जाने के कारण यह वाद राजस्व न्यायालय में चलने योग्य नहीं है। उल्लेखनीय है कि नगर सुधार न्यास द्वारा वर्तमान प्रत्यर्थी संख्या–3 के पक्ष में आवंटन दिनांक 27–11–2006 को किया गया है, जबकि वादी द्वारा तो विचारण न्यायालय में वाद दिनांक 23–06–2006 को ही प्रस्तुत कर दिया था, जिसमें वादग्रस्त भूमि को नगर सुधार न्यास के नाम दर्ज करने की कार्यवाही को ही चुनौती दी गयी थी। अतः वादी के खातेदारी घोषणा के वाद के लम्बित रहते नगर सुधार न्यास द्वारा जारी पश्चातवर्ती आवंटन आदेश दिनांक 27–11–2006 के आधार पर वादी के वाद की पोषणीयता को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है।

15– विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी / वर्तमान प्रत्यर्थी संख्या–3 द्वारा प्रस्तुत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रार्थनापत्र को स्वीकार करते हुये दावे को क्षेत्राधिकार से बाहर मानते हुये खारिज किया है, अतः उक्त आदेश 7 नियम 11 के दायरे (scope) और विचारण न्यायालय के आदेश दिनांक 25–05–2007 के

औचित्य को समझने के लिये सिविल प्रक्रिया संहिता के आर्डर 7 नियम 11 का अवलोकन कर लेना उचित रहेगा, जो कि निम्न प्रकार हैः—

> ***"11. Rejection of plaint.-*** *The plaint shall be rejected in the following cases:—*
> *(a) where it does not disclose a cause of action;*
> *(b) where the relief claimed is undervalued, and the plaintiff, on being required by the Court to correct the valuation within a time to be fixed by the Court, fails to do so;*
> *(c) where the relief claimed is properly valued, but the plaint is returned upon paper insufficiently stamped, and the plaintiff, on being required by the Court to supply the requisite stamp-paper within a time to be fixed by the Court, fails to do so;*
> *(d) where the suit appears from the statement in the plaint to be barred by any law;*
> *(e) where it is not filed in duplicate;*
> *(f) where the plaintiff fails to comply with the provisions of rule 9;*
> *Provided that the time fixed by the Court for the correction of the valuation or supplying of the requisite stamp-paper shall not be extended unless the Court, for reasons to be recorded, is satisfied that the plaintiff was prevented by any cause of an exceptional nature from correcting the valuation or supplying the requisite stamp-paper, as the case may be, within the time fixed by the Court and that refusal to extend such time would cause grave injustice to the plaintiff.*

उपरोक्तानुसार आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का सारांश है कि न्यायालय द्वारा प्रारम्भिक स्तर पर वाद को खारिज किया जा सकता है, यदि (क) वाद हेतुक प्रकट नहीं किया गया हो, (ख) अनुतोष का मूल्यांकन कम किया गया हो, (ग) वाद पत्र अपर्याप्त स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया हो, (घ) वाद किसी विधि द्वारा वर्जित हो, (ड.) वादपत्र डुप्लीकेट में प्रस्तुत नहीं करना अथवा (च) नियम 9 की अनुपालना नहीं की गयी हो।

16— उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से जाहिर है कि आदेश 7 नियम 11 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार के आधार पर वाद को प्रारम्भिक स्तर पर खारिज करने का कोई प्रावधान ही नहीं है। हस्तगत प्रकरण में विचारण न्यायालय द्वारा जिस आधार पर वाद को राजस्व न्यायालय में विचारणीय नहीं माना है उसका अर्थ है कि वाद को विधि से वर्जित मान कर खारिज किया गया है। सुस्थापित स्थिति यह है कि जब न्यायालय द्वारा वाद का परीक्षण आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत इस आधार पर किया जा रहा हो कि वाद विधि द्वारा वर्जित है अर्थात परीक्षण का आधार आदेश 7 नियम 11 का उपनियम (घ) हो तो उपनियम (घ) की शब्दावली "where the suit **appears from the statement in the plaint** to be barred by any law" पर ध्यान देना आवश्यक है जिसका आशय यह है कि आदेश 7 नियम 11 (घ) के अन्तर्गत प्रस्तुत

प्रार्थनापत्र में भी और वाद खारिज करते समय न्यायालय के आदेश में भी, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वादपत्र के "**कौन से अभिकथन**" के कारण दावा "**किस विधि**" से बाधित है। अगर वादपत्र के किसी अभिकथन से दावा विधि से वर्जित नहीं है तो आदेश 7 नियम 11 के प्रार्थनापत्र में वर्णित ऐसे तथ्यों के आधार पर दावे को प्राथमिक रुप से खारिज नहीं किया जा सकता है, जो कि वादपत्र के अभिकथनों (averments) में वर्णित नहीं हैं। वादोत्तर (written statement), प्रतिवाद (counter claim) अथवा आदेश 7 नियम 11 के प्रार्थनापत्र में वर्णित ऐसे तथ्यों/ अभिवचनों का कोई महत्व नहीं है जो कि वादपत्र के अतिरिक्त हैं। आदेश 7 नियम 11 के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रार्थनापत्र में अथवा वादोत्तर में वर्णित अतिरिक्त कथनों/ तथ्यों के आधार पर, विवाद्यक विरचित करते समय अलग से विवाद्यक विरचित किया जा सकता है जिसका निर्णय साक्ष्य एवं दस्तावेजात के विवेचन के आधार पर किया जायेगा। ऐसे विवाद्यक का निर्णय अन्य विवाद्यकों के साथ भी किया जा सकता है अथवा अलग से अन्य विवाद्यकों से पूर्व भी किया जा सकता है। किन्तु इसके लिये साक्ष्य एवं दस्तावेजात का अवसर देना और उनकी विवेचना आवश्यक है। माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा रामस्वरुप एवं अन्य के प्रकरण - 2010 (1) DNJ (Raj) 495 में दिनांक 05–10–2009 को पारित निर्णय के अनुच्छेद 2 व 3 को यहां उदधृत करना हम उचित समझते हैं जो कि निम्न प्रकार हैं:–

> *"2. Learned counsel for the petitioner contended that Rajkumar alleged Sevayat was not competent to file the suit on behalf of Thakurji Shri Kalyanji Maharaj known as Kalali Temple. It was then submitted that disputed properties were already declared personal properties of defendant by the competent authority under section 23(2) of the Rajasthan Land Reforms and Jagir Resumption Act, 1952 (in short the Act of 1952) and the same cannot be challenged in any civil court, as such the suit was barred by section 46 of the Act of 1952 and this fact has not properly been considered by the trial court while deciding the application.*
>
> *3. I have considered the above submissions in the light of the impugned order. So far objection raised in the application with regard to competency of Sevayat Rajkumar to file suit on behalf of Thakurji Shri Kalyanji Maharaj is concerned, it cannot be taken to be a ground of rejection of plaint under Order 7 Rule 11 of CPC and* ***so far non-maintainability of the suit on account of bar by any law is concerned, it is true that suit can be rejected by the court if such suit appears to be barred by any law from the statement of the plaint as provided under Order 7 Rule 11 of CPC but facts highlighted by the defendant cannot be considered for rejection of the plaint under such provision if such bar of law does not appear from the statement of the plaint.*** *The trial court has rightly considered and rejected the application filed under Order 7 Rule 11 of CPC which does not require any interference*

by this Court. Therefore, there is not merit in this civil revision petition."

17— माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों— WLC 2011 (4) page 531, और 2012 (2) DNJ (Raj) page 582 में भी इसी सिद्धान्त को पुष्ट किया गया है। गोविन्द नारायण के प्रकरण WLC 2011 (4) page 531 में तो माननीय उच्च न्यायालय द्वारा आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में प्रतिवादी पक्ष के अधिकार को भी प्रश्नगत किया है। सुलभ संदर्भ के लिये उक्त निर्णय दिनांक 18—08—2011 के अनुच्छेद 7, 8 व 9 को हम उदधृत करना उचित समझते हैं जो कि निम्न प्रकार हैः—

"7- When a plaint is presented by the plaintiff in the Court, it is for the Court to pass an order with regard to the registration of plaint on the report of Munsarim or Reader of the Court, as the case may be.

8- Rule 32 of General Rule (Civil), 1986 reads thus:

> *A Munsarim or Reader of a Civil Court appointed to receive plaints, shall examine each plaint presented to him, and shall report thereon whether the provisions of the Code and Court Fees Act have been observed and whether the claim is within the jurisdiction of the Court, constitutes a cause of action, and has been presented within the period prescribed for the institution of such a suit. The Munsarim or Reader shall see that the actual date of presentation of the plaint is entered upon the impressed stamp and adhesive label, if any, below the date of purchase endorsed on them. On the back of all plaints, the Munsarim or Reader shall note:-*
>
> *(a) date and time of presentation of the plaint;*
> *(b) name of presenter;*
> *(c) classification of suit, and*
> *(d) court fees paid.*

9- Thus, from a bare perusal of the language of Rule 32 of General Rules (Civil), 1986 and Rule 11 of Order 7 CPC, it is found that the court has to see as to whether plaint discloses any cause of action; it is sufficiently stamped; and has been presented within time prescribed for the institution of such a suit. If the plaint does not constitute a cause of action or it is insufficiently stamped or it is barred by law, then in that case, on the basis of report of the Munsrim or Reader, as the case may be, the Court shall reject the plaint invoking the powers under Rule 11 of Order 7 CPC. The Court is not required to pass an order under Order 7 Rule 11 CPC at the behest of the defendant when an application is filed under this provision by the defendant in this regard. The power to attract the provisions of Order 7 Rule 11 CPC is not conferred on the party to the suit. On the contrary, it is the bounden duty of every

Court to obtain the report of the Munsarim or Reader of the Court, as the case may be, and thereafter if the contents of the plaint constitute a cause of action; it is sufficiently stamped and it is not barred by law, the Court shall order to register the plaint and if it does not disclose any cause of action or it is insufficiently stamped or it is barred by law, then without there being any prayer of the defendant, the Court is duty bound to reject the plaint suo-moto. Thus, the power to attract the provisions of Order 7 Rule 11 CPC is not conferred on the party, but it is conferred on the Court and it is the Court alone, which can exercise the powers to reject the plaint under Order 7 Rule 11 CPC. If viewed from this angle, it can safely be inferred that the petitioner-defendant had no right to file the application under Order 7 Rule 11 CPC imploring the Court to reject the plaint and the application was not maintainable."

उपरोक्त न्यायिक दृष्टान्त में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि किसी भी पक्षकार को आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत वादपत्र को खारिज करने हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। उक्त प्रावधान केवल न्यायालय के लिये है। हितबद्ध पक्षकार न्यायालय का ध्यान जरिये प्रार्थनापत्र आकर्षित कर सकता है किन्तु न्यायालय द्वारा इस बिन्दु का निर्णय केवल वादपत्र के अभिकथनों के आधार पर किया जाना चाहिये।

18— इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वादपत्र में वर्णित तथ्यों/ अभिकथनों से बाहर जाकर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अन्तर्गत किसी वाद को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वाद विधि से वर्जित है। अगर किन्हीं बिन्दुओं के विनिश्चयन हेतु प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत वादोत्तर, प्रतिवाद—पत्र अथवा प्रार्थनापत्र में वर्णित अतिरिक्त कथनों को पढना पड़े अथवा अन्य दस्तावेजात का अवलम्बन लेना पड़े तो ऐसे मामले में दावा आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत खारिज नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामले में वादपत्र, वादोत्तर आदि के आधार पर विवाद्यक विरचित किये जाने चाहिये और तत्पश्चात साक्ष्य आदि की विवेचना के पश्चात ही निर्णय किया जाना होता है। किन्हीं विवाद्यक को, विधिक प्रकृति का होने की स्थिति में, अन्य विवाद्यक से पूर्व निर्णीत किया जा सकता है किन्तु इसके लिये प्रकरण को साक्ष्य एवं दस्तावेजात के स्तर से गुजारना व साक्ष्य एवं दस्तावेजात की विवेचना करना आवश्यक है।

19— हस्तगत प्रकरण में वादी के वादपत्र को समग्र रुप से पढने से जाहिर है कि वादी का वाद खातेदारी अधिकारों की घोषणा का और स्थायी निषेधाज्ञा का है जिसका आधार यह है कि वादग्रस्त भूमि कभी राजस्व अभिलेख में उसकी खातेदारी व कब्जा काश्त की रही है। वादी अपने वाद को साबित कर पाता है या नहीं, यह प्रश्न वर्तमान में

विचारणीय नहीं है। वर्तमान में विचारणीय प्रश्न केवल यह है कि वादी का वाद, जो कि खातेदारी अधिकारों की घोषणा व स्थायी निषेधाज्ञा का है, वह राजस्व न्यायालय के क्षेत्राधिकार का है या नहीं? न्यायालय के क्षेत्राधिकार का निर्धारण करने हेतु मूलभूत सिद्धान्तों पर माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जसवन्तसिंह एवं अन्य के प्रकरण 1984 RRD 851=1984 RLW 608 में विस्तार से चर्चा की है। उक्त निर्णय दिनांक 22–03–1984 के अनुच्छेद संख्या 4, 5, 6, 7, 9 और 15 को हम यहां उदधृत करना उचित समझते हैं:–

> *"4. It is well settled that the question of jurisdiction ought to be decided on the basis of allegations made in the plaint. There is no doubt that some times the plaint is so drafted as to camouflage the real purpose thereof and as such ii has often been held that the substance of the plaint should be considered by the court for the purpose of determination of the question of jurisdiction."*
>
> *"5. In Chandanmal v. Dawar 1954 RLW 184, it was observed that the question of jurisdiction must be initially determined on the basis of the allegations made in the plaint and that the substance of the plaint and its main object should be kept in view and not merely its outward form. Modi J., observed in that case that if the aforesaid principles were not kept in view it may be open to a party to evade the liability as to exclusiveness of jurisdiction. However, it was made clear that care should be taken not to introduce anything in the plaint which may not be found there or which may be foreign to its man purpose. In another decision, in the case of Sukhlal and Ors. v. Devilal and Ors. Modi J., speaking for the court, enunciated the true principles, by observing that the plaint as a whole should be looked at and that the substance of the plaint and not its ostensible form really matters. Further nothing should be imported into the plaint, which it really does not contain, either actually or by necessary implication. Thus, a plaint should be construed as it is and not as it ought to be."*
>
> *"6. In Ratanlal v. Gram Panchayat Agolai 1977 RLW 143, one of us, sitting singly observed as under:*
>
> > *'It is well settled that the question of jurisdiction has to be decided on the basis of the averments made in the plaint. It is of course true that not only the relief claimed in the plaint but all the allegations made therein should be taken into consideration for the purpose of deciding the question as to whether the suit is exclusively triable by a revenue court or not. The court must be guided by the substance of the plaint are not merely by its form. Therefore, in order to arrive at a correct conclusion on the question of jurisdiction, the substance of the plaint must be taken into consideration to find out the true nature or the object of the suit.'"*

"7. In Shyam Kumar v. Budh Singh 1977 RLW 131 Sachar, J. observed as under:

> *'It is well settled that the question of jurisdiction, namely, whether a suit is .exclusively triable by a revenue court or a civil court can take cognizance of it has to be decided on the allegations made in the plaint. It is also further settled that it is the substance of the plaint and the true nature of the suit that is to be seen to determine the question of jurisdiction. If in substance the relief claimed is one which the revenue courts alone are entitled to give the jurisdiction of the civil courts will be ousted even though it may require the revenue court to incidentally determine some ancillary facts."*

"9. Now Section (sic) 207 of the Rajasthan Tenancy Act, 1955 provides that all suits and applications of the nature specified in the Third Schedule shall be heard and determined by a revenue court and further it has been provided that no court other than a revenue court shall take cognizance of any such suit or application or of any suit or application based on a cause of action in respect of which any relief could be obtained by means of any such suit or application. The explanation aopended to Section 207 provides that if the cause of action is one in respect of which relief might be granted by the revenue court, it is immaterial that the relief asked for from the civil court is greater than, or additional to or is not identical with that which the revenue court may possibly grant. Section 88 of the Tenancy Act provides for filing of a suit for declaration by a person claiming to be a tenant, in respect of his right as a tenant or for declaration of ins share in a joint tenancy. Further Section 183 of the Tenancy Act provides for filing a suit for ejectment of a trespasser who has taken or retained possession of land without any lawful authority. The suits covered by Section 88 and 183 of the Tenancy Act are included at items No. 5 and 23 respectively in the Third Schedule appended to the Tenancy Act. Thus in respect of matters covered by the aforesaid items included in the Third Schedule, the revenue courts alone have exclusive jurisdiction to entertain suits, for declaration of the plaintiff's right as a tenant of agricultural land and for ejectment of a trespasser therefrom. According to the provisions of Section 207 of the Tenancy Act, the jurisdiction of the revenue court to try a suit of the nature specified in items No. 5 and 23 relating to agricultural tenancies, would be based on the cause of action for filing such suit. The term' cause of action', though n(sic) where defined is now very well understood. It means every fact which would be necessary for the plaintiff to prove, if traversed, in order to support his right to judgment. ((sic)See Mohd Khalil Khan v. Mahbub Ali Mian AIR 1949 F.C. 78. It follows that in each and very case the cause of action for filing of the suit shall have to be strictly scrutinised in order to determine whether the suit is exclusively cognizable by a revenue Court or is impliedly cognizable only by a

revenue court or is cognizable by a civil court. If more than one reliefs are claimed in the suit, then the jurisdiction of the civil or revenue courts to entertain the suit shall be determined on the basis as to what is the real or substantial or main relief claimed in the suit."

"15. In Mohan Lal v. Ratna 1970 WLN 457 the plaintiff came with an allegation that the defendant by practising fraud on him managed to get a document executed in favour of the defendant, in which the plaintiff was made to acknowledge that he had only 1/3rd share in the land in dispute, while the remaining 2/3rd belonged to the defendant. In that case, it was held that when the plaintiff subsequently discovered the fraud it was not necessary for him to get the document cancelled. The learned Single Judge of this observed as under:

'It is well established that in order to determine the true nature of the relief claimed in a suit, the pith and substance, and not the form in which the relief may be couched has to be considered. On considering the pleadings in the plaint in the present case carefully and applying the doctrine of pith and substance of the pleadings. I have come to the conclusion that the relief claimed in the suit really amounted to a relief for a declaration that the plaintiff had half share in the land in question. The suit in the present case cannot be said to be one for mere avoidance of the document."

20— पूर्व में हमने अशोक चौहान बनाम श्रीमती अमरी बाई व अन्य के प्रकरण— 2010 RRD 509 के न्यायिक दृष्टान्त पर चर्चा की है। उक्त प्रकरण में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा न्यायालय के क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में यह प्रतिपादित किया गया किः—

"…. the learned judge is also justified in concluding that while deciding the question of jurisdiction, the Court is to go by the plaint which has been submitted before it. However, simultaneously the Court does have the power to lift veil and to see the actual nature of relief being sought by the plaintiff. While lifting the veil, the learned judge has validly concluded that since the land in question is agricultural in nature, the only right that would be declared in favour of the plaintiff would be rights of a "Khatedar". Since "khatedari rights" can only be declared by a revenue court, the learned judge is justified in concluding that the civil Court would not have jurisdiction to enter into this issue. Moreover, he has also noticed the fact that under Sections 88 of the Land Revenue Act (It should be Tenancy Act), the power to declare the "khatedari rights" lies with the revenue Court. Furthermore, under section 188 of the land Revenue Act (again it should be Tenancy Act), the revenue Court does have the power to grant a permanent injunction. Since the suit was for

declaration and permanent injunction, the learned judge has correctly concluded that it is a subject matter of jurisdiction exercised by the revenue Court. Therefore, in view of Section 207 of the Land Revenue Act (again it should also be Tenancy Act), which clearly ousts the jurisdiction of civil Court, the plaint should be returned to the plaintiff and he be directed to approach the revenue Court." (para 6)

21— माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जसवन्तसिंह के प्रकरण— 1984 RRD 851=1984 RLW 608 में प्रतिपादित सिद्धान्त का अनुसरण मण्डल द्वारा दुर्गालाल बनाम बाबा परमहंस जोगश्वर महादेव का मन्दिर के प्रकरण— 1985 RRD 274 में किया गया है और पंजीकृत दान—पत्र के होते हुये क्षेत्राधिकार बाबत यह अभिनिर्धारित किया गया है किः—

"... the main relief being asked for in the plaint i.e. declaration of khatedari rights and permanent injunction against the defendants-applicants can be granted without cancellation of the gift deed …."

22— उपरोक्त विवेचन के आधार पर हमारा मत है कि किसी भी वाद में न्यायालय का क्षेत्राधिकार वाद के सारभूत अभिकथनों व चाहे गये मुख्य अनुतोष के आधार पर किया जाना चाहिये। क्षेत्राधिकार का आधार यह नहीं हो सकता है कि वाद में किये गये अभिकथनों को साबित करने में वादी सफल हो पायेगा या नहीं और कि चाहा गया अनुतोष वादी को मिल सकता है या नहीं? न्यायालय का क्षेत्राधिकार केवल इस आधर पर निर्धारित होता है कि अगर वादी का वाद साबित हो जाता है तो चाहा गया अनुतोष देने में न्यायालय सक्षम है या नहीं? हस्तगत प्रकरण में वादी का वाद आधार यह था कि वादग्रस्त भूमि पूर्व के राजस्व अभिलेखों में उसकी खातेदारी में दर्ज रही है जिसे गलत रुप से सिवायचक दर्ज कर दिया गया और वादी को सुनवाई का अवसर दिये बिना भूमि नगर सुधार न्यास को हस्तान्तरित कर दी गयी। वाद प्रस्तुत करके अनुतोष यह चाहा गया है कि वादी को वादग्रस्त भूमि का खातेदार घोषित किया जावे और नगर सुधार न्यास का नाम राजस्व अभिलेखों से हटाया जावे। साथ ही प्रतिवादीगण को स्थायी निषेधाज्ञा से पाबन्द किया जावे कि वादी के कब्जे में दखल नहीं करें। ऐसा वाद अधिनियम, 1955 की धारा 88, 89, 188 एवं 92—ए के अन्तर्गत आता है और उक्त अधिनियम की धारा 207 सपठित तृतीय अनुसूची अनुसार ऐसे वाद के विचारण का और चाहा गया अनुतोष देने का क्षेत्राधिकार राजस्व न्यायालय को प्राप्त है।

23— सारांशतः इस न्यायालय के सुविचारित मत अनुसार आदेश 7 नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रार्थनापत्र स्वीकार करते हुये विचारण न्यायालय द्वारा वादी का दावा क्षेत्राधिकार व पोषणीयता के आधार पर खारिज करना एक त्रुटिपूर्ण निर्णय है। प्रथम अपीलीय

न्यायालय द्वारा भी ऐसे त्रुटिपूर्ण निर्णय की पुष्टि करके विधिक त्रुटि कारित की गयी है। अतः हस्तगत द्वितीय अपील स्वीकार की जाकर प्रकरण गुणावगुण पर निर्णय हेतु विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किये जाने योग्य है।

23— परिणामतः हस्तगत द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुये विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 25—05—2007 तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारापारित आलोच्य निर्णय दिनांक 22—12—2007 को एतदद्वारा अपास्त किया जाता है और प्रकरण पुनः विचारण न्यायालय, उपखण्ड अधिकारी, अजमेर को इस निर्देश के साथ प्रतिप्रषित किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा व्यक्त अभिमत (observations) के आधार पर प्रतिवादी पक्ष से जवाबदावा लेकर समुचित विवाद्यक विरचित किये जावें और उभय पक्ष को साक्ष्य व सुनवाई का समुचित अवसर देते हुये वाद का निर्णय गुणावगुण पर किया जावे।

निर्णय खुले न्यायालय में सुनाया गया।

(मूलचन्द मीणा)
सदस्य

(अशोक कुमार सांवरिया)
सदस्य